शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

अप्रेल : १९५७ ☆ वर्ष बारहवाँ, चैत्र ☆ अंक : १२

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

यह है जैन शासन का मुद्रालेख

''दर्शनशुद्धि से ही आत्मसिद्धि''

दर्शनशुद्धि में सात तत्त्वों की प्रतीति कैसी होती है... और उस प्रतीति का कितना अधिक जोर है... वह पूज्य गुरुदेव ने अत्यन्त सरल शैली में समझाया है। अहो! श्रद्धा का बल अपार है... जगत के समस्त तत्त्वों का निर्णय उसमें आ जाता है; वह प्रत्येक जीव का प्रथम-प्रधान कर्तव्य है।

पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि—सम्यक्त्वी अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा को दृष्टि में लेकर उसी में आराम करता है... आतमराम में रहना ही सच्चा आराम है... आत्मस्वभाव की सन्मुखता के बिना सुख हराम है!

जिसने शुद्ध आत्मा को दृष्टि में लेकर दर्शनशुद्धि प्रगट की, उसने भगवान के उपदेश का सार ग्रहण किया है; जो जीव दर्शनशुद्धि नहीं करता, आत्मा को अशुद्ध ही अनुभव करता है; उसने वास्तव में भगवान के उपदेश का ग्रहण नहीं किया है। भगवान के उपदेश में दर्शनशुद्धि करने का मुख्य कथन है।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[१४४]

एक अंक
चार आना

श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ [सौराष्ट्र]

नया प्रकाशन

मोक्षमार्ग प्रकाशक की किरणें

[द्वितीय भाग]

पृष्ठ संख्या ४५३ सजिल्द, मूल्य लागत मात्र २)
जिसमें सातवें अधिकार में से जैनमत अनुयायी मिथ्यादृष्टि के स्वरूप पर बड़ी स्पष्ट शैली में सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी ने व्याख्यान किये हैं, उन व्याख्यानों का सार है।

आज ही मंगाइये—
पता— **जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**
पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मंगाइये! **अवश्य मंगाइये!!**

नवीन प्रकाशित हिन्दी भाषा में

जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला

प्रथम भाग, मूल्य लागत मात्र ।।-)

इसके प्रथम भाग में द्रव्य, गुण, पर्याय तथा अभाव इन चार विषयों से सम्बन्धित अनेक प्रकार के प्रश्न उठाकर उनके आगम, न्याय, युक्ति एवं स्वानुभव सहित बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत उत्तर दिये गये हैं। इसका दूसरा भाग और तीसरा भाग भी शीघ्र प्रकाशित हो रहे हैं।

मिलने के पते—

श्री सेठी दि० जैन ग्रंथमाला
६२, धनजी स्ट्रीट, बंबई-३

श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म

अप्रेल : १९५७ ☆ वर्ष बारहवाँ, चैत्र ☆ अंक : १२

जिनशासन की महिमा

[२]

[श्री भावप्राभृत गाथा ७९ के प्रवचनों से]

जैनशासन का उपदेश ऐसा कहता है कि—अरे चैतन्य! तू स्वसन्मुख हो.... स्वसन्मुख होना ही जागृति का उपाय है.... स्वसन्मुखता में ही तेरा हित है, उसी में मोक्षमार्ग है। भाई रे! आत्मा क्या है! उसके भान बिना तेरी जागृति कहाँ से होगी?

तुझे आत्मा की भावना है या कर्म बंध की?

तुझे छुटकारे की भावना है या बंधन की?

तुझे मोक्ष की भावना है या संसार की?

तुझे शुद्धता की भावना है या विकार की?

हे भाई! यदि तुझे छुटकारे की भावना हो—मोक्ष की भावना हो, शुद्धता की भावना हो तो जैनशासन में कहे हुए सम्यक्त्वादि शुद्ध भावों का सेवन कर और रागादि का सेवन छोड़! धर्मी को राग की भावना नहीं होती, उसे तो शुद्ध आत्मा की ही भावना होती है।

[—पूज्य गुरुदेव]

सम्यक्त्वी को ही सोलह भावना और तीर्थंकर प्रकृति

अब कहते हैं कि उत्कृष्ट पुण्यबन्धरूप तीर्थंकर प्रकृति भी जिनशासन में सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा को ही बँधती है; मिथ्यादृष्टि को वैसे पुण्य भी नहीं होते। अहो! धर्म की बात तो क्या करें! किन्तु जिससे तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो—ऐसे शुभभाव भी सम्यग्दृष्टि को ही आते हैं;

मिथ्यादृष्टि को वैसे भाव ही नहीं होते। अहो! तीर्थंकर के वैभव की क्या बात! उनके आत्मा का चैतन्यवैभव तो अचिन्त्य है और बाह्य पुण्यवैभव लोकोत्तर होता है। सौ इन्द्र जिनके चरणों की पूजा करते हैं, उनके पुण्य की भी क्या बात! सौ इन्द्रों के पुण्य की अपेक्षा भी जिनका पुण्य उत्तम है—ऐसे तीर्थंकरदेव और उनके दिव्य समवशरण को जो प्रत्यक्ष देखे, उसी को खबर पड़ सकती है!—लेकिन यहाँ तो यह बतलाना है कि ऐसा भाव सम्यग्दृष्टि को ही आता है। सम्यग्दर्शनसहित भूमिका में ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, अन्य भूमिका में बंध नहीं होता। चौथे गुणस्थान में भी सम्यक्त्वी को—जिसके वैसी योग्यता हो, उसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है (—श्रेणिक राजा की भाँति); किन्तु यहाँ उत्कृष्ट बात बतलाने के लिये इस गाथा में मुनि की बात ली है।

तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति-आस्रव के कारणभूत सोलह भावनाओं का वर्णन किया है; उनमें सबसे पहली भावना, दर्शनविशुद्धि है; वह दर्शनविशुद्धि मुख्य है और वह सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होती। सम्यग्दर्शन के बिना कोई जीव ऐसा माने कि मैं सोलहकारण की भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लूँ तो इसप्रकार बंध नहीं होता। जिसे तीर्थंकर प्रकृति बाँधने की भावना है, उसे आस्रव की भावना है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है और मिथ्यादृष्टि को कभी तीर्थंकर नामकर्म का बंध नहीं होता।

यहाँ वास्तव में तीर्थंकर कर्म प्रकृति की महिमा नहीं बतलाना है किन्तु सम्यग्दर्शन की महिमा बतलाना है। किसी सम्यग्दृष्टि जीव को सोलह कारण में से सम्यग्दर्शन की शुद्धि ही हो, अर्थात् दर्शनविशुद्धि भावना ही हो, और दूसरे पन्द्रह कारण विशेषरूप से न हों, तथापि उसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है किन्तु दर्शनविशुद्धि के अतिरिक्त दूसरे पन्द्रह कारण सामान्यतः हों और एक दर्शनविशुद्धि ही न हो तो ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव को तीर्थंकरप्रकृति का बंध नहीं हो सकता। सम्यग्दृष्टियों में भी जिस द्रव्य में उस प्रकार की—तीर्थंकर होने की योग्यता हो, उसी को उस प्रकृति का बंध होता है। सभी सम्यग्दृष्टि जीवों को तीर्थंकरप्रकृति का बंध नहीं होता; अमुक जीवद्रव्य में ही उस प्रकार की विशिष्ट योग्यता होती है, उसी को उस प्रकृति का बंध होता है; किन्तु जिसे-जिसे उस अचिन्त्य तीर्थंकरप्रकृति का बंध होता है, उसे-उसे सम्यग्दर्शन सहित भूमिका में ही वह होता है; मिथ्यादृष्टि की भूमिका में तो उस प्रकृति का बंध होता ही नहीं।—ऐसी सम्यग्दृष्टि के भाव की महिमा है। तीन लोक में उत्तम और सारभूत ऐसी अपूर्व बोधिरूप मोक्षमार्ग सम्यग्दृष्टि को ही होता है। उसीप्रकार तीन लोक में उत्तम पुण्यरूप ऐसी तीर्थंकरप्रकृति भी

सम्यग्दृष्टि को ही होती है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन की महिमा बतलाना है। सम्यक्त्वी को कहीं कर्म के आस्रव की (तीर्थंकरप्रकृति की भी) भावना नहीं है, भावना तो शुद्धता की ही है। सोलहकारण भावना है, उसमें भी कहीं उस प्रकार के राग की या आस्रव की भावना नहीं है, स्वभाव की पूर्णता की ही भावना है। उस भावना में बीच में उसप्रकार के विकल्पों से तीर्थंकर प्रकृति आदि पुण्य का बंध होता है।

तीर्थंकरप्रकृति बँधने का प्रारम्भ सम्यक्त्वी को मनुष्य भव में ही होता है, और वह भी केवली या श्रुतकेवली के सान्निध्य में ही होता है। महावीर भगवान के समय इस भरतक्षेत्र में श्रेणिक राजा ने सम्यग्दर्शनसहित भूमिका में तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया है और इस समय नरक में होने पर भी वहाँ उन्हें प्रतिक्षण तीर्थंकरप्रकृति के रजकणों का बंध हो रहा है। वहाँ से निकलकर वे इस भरतक्षेत्र में आगामी चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होंगे। उस भव में राग तोड़कर केवलज्ञान होने के पश्चात उसी तीर्थंकरप्रकृति का उदय आयेगा और उसके निमित्त से इन्द्र अद्‌भुत समवशरण की रचना करेंगे तथा दिव्यध्वनि खिरेगी; जिसके निमित्त से अनेक जीव धर्म प्राप्त करेंगे। सम्यग्दर्शनसहित शुद्धभाव की भूमिका में ही ऐसा होता है, इसलिये यहाँ तो उन सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावों की महिमा बतलाना है। उस शुद्धभाव की प्राप्ति जैनशासन की महिमा है।

जैनशासन का उपदेश यह कहता है कि—अरे चैतन्य! तू स्वोन्मुख हो.... स्वसन्मुख हो! स्वसन्मुख होना ही जागृति का उपाय है; स्वसन्मुखता में ही तेरा हित है; उसी में मोक्षमार्ग है। भाई रे! आत्मा क्या है? उसके भान बिना कहाँ से तेरी जागृति होगी! तुझे आत्मा की भावना है या कर्मबंधन की? तुझे छुटकारे की भावना है या बंधन की? तुझे मोक्ष की भावना है या संसार की? यदि तुझे छुटकारे की भावना हो—मोक्ष की भावना हो तो जैनशासन में कहे हुए शुद्धभावों का सेवन कर और राग का सेवन छोड़! धर्मी को बंधन की भावना नहीं होती, उसे तो शुद्ध आत्मा की ही भावना होती है; आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभाव की ही उसे भावना है। वीतरागभाव ही जैनधर्म है, राग वह जैनधर्म नहीं है। जिसे राग की भावना है, उसे जैनधर्म की खबर नहीं है।—यह बात आचार्यदेव ८३ वीं गाथा में एकदम स्पष्ट करेंगे।

(आश्विन शुक्ला ५, वीर सं० २४८१)

यह भावप्राभृत की वचनिका हो रही है। इसमें आचार्यदेव कहते हैं कि—आत्मा ज्ञान-आनन्दस्वरूप है; शुद्ध ज्ञान-चेतना उसका स्वभाव है और पुण्य-पाप, वह अशुद्धभाव है, वह

उसका स्वभाव नहीं है।—ऐसे आत्मा की श्रद्धारूप शुद्धभाव की भूमिका हो, उसी को धर्म होता है, इसके सिवा धर्म नहीं होता। धर्म वह रागरहित शुद्धभाव है और सम्यग्दर्शन उसकी भूमिका है। सम्यग्दर्शन के बिना सब बेकार है। सम्यग्दर्शनसहित की भूमिका में सोलहकारण भावना का भाव आने पर किसी जीव को तीर्थंकरप्रकृति का बंध होता है, किन्तु दर्शनविशुद्धि के बिना तो किसी जीव को तीर्थंकरप्रकृति का बंध नहीं होता। दूसरी पन्द्रह भावनाऐं विशेषरूप से न हों, तथापि अकेली दर्शनविशुद्धि उनका कार्य कर लेती है; और वह दर्शनविशुद्धि सम्यगदर्शन के बिना नहीं होती, इसलिये उन सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावों का ही माहात्म्य है। जैनशासन में राग का माहात्म्य नहीं है किन्तु शुद्धभाव का ही माहात्म्य है।

देखो, यहाँ कहते हैं कि तीर्थंकर प्रकृति की अचिन्त्य महिमा है तथा तीर्थंकर भगवान तीन लोक से पूज्य हैं; किन्तु उस तीर्थंकर प्रकृति का बंध किसे होता है ?—कि जिसे दर्शनविशुद्धि हो और विरक्तभाव हो—ऐसे जीव को सोलहकारण भावना से वह प्रकृति बँधती है। वहाँ भी जो राग है, वह कहीं धर्म नहीं है किन्तु उसके साथ सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव हैं, वही धर्म है और उसी की यथार्थ महिमा है।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो, वह भी आस्रव-बंध है, और उसके कारणरूप शुभभाव है, वह भी विकार है; उसकी भावना ज्ञानी को नहीं है और अज्ञानी को तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता।

आनन्दकंद चैतन्यस्वभाव की ही धर्मी को भावना है; ऐसे धर्मी को बीच में राग से तीर्थंकर प्रकृति बँध जाती है और केवलज्ञान होने के पश्चात् उसके फल में समवशरणादि का संयोग होता है। भगवान को कहीं समवशरण के प्रति राग या उपभोग का भाव नहीं है किन्तु आराधक पुण्य के फल में वैसा बन जाता है। अभी तो तीर्थंकर भगवान माता के गर्भ में भी न आये हों; उससे छह महीने पूर्व ही देव आकर सुवर्णमयी नगरी की रचना और प्रतिदिन रत्नों की वृष्टि करते हैं। इन्द्र आकर माता-पिता का बहुमान करते हैं कि हे रत्नकुक्षिधारिणी माता! तेरी कुक्षि से तीन लोक के नाथ अवतरित होनेवाले हैं; इसलिये तू तीन लोक की माता है.... फिर भगवान का जन्म होने पर इन्द्र और देव आकर महा वैभव से मेरुगिरि पर जन्माभिषेक-महोत्सव करते हैं.... भगवान को वैराग्य होने पर जब दीक्षा ग्रहण करते हैं, उस समय भी इन्द्र और देव भारी महोत्सव करते हैं; और केवलज्ञान होने पर इन्द्र, दैवी समवशरण की रचना करके महोत्सव करते हैं। भगवान के समवशरण की ऐसी शोभा होती है कि स्वयं इन्द्र भी उसे देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं और

कहते हैं कि अहो नाथ! यह तो आपके अचिंत्य पुण्य का प्रताप है! प्रभो! हम में ऐसी रचना करने का सामर्थ्य नहीं है।—इत्यादि पंचकल्याणक का योग तीर्थंकर भगवान को ही होता है। पूर्व काल में सम्यग्दर्शनसहित साधकदशा में विशिष्ट पुण्यबंध हुआ, उसका वह फल है। दर्शनविशुद्धि के बिना किसी जीव को तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता, इसलिये सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावों की महिमा है।

तीर्थंकर प्रकृति के कारणरूप से सोलहभावनाएँ कही हैं, उन सोलहभावनाओं में सबसे पहली दर्शनविशुद्धि है।

(१) दर्शनविशुद्धि

का क्या अर्थ है? जीवादि तत्त्वों के स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान करे और निर्विकल्प आनन्द सहित आत्मा का अनुभव करके उसकी प्रतीति करे, वह सम्यग्दर्शन है, और उस सम्यग्दर्शनपूर्वक ही दर्शनविशुद्धिभावना होती है। ऐसी दर्शनविशुद्धि की भूमिका में ही तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है। किन्तु इतना विशेष समझना चाहिये कि वहाँ सम्यग्दर्शन की शुद्धि, स्वयं बंध का कारण नहीं है, किंतु उस सम्यग्दर्शन के साथ अमुक विकल्प उठने पर तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। सम्यग्दर्शन तो संवर-निर्जरा का कारण है, वह कहीं बंध का कारण नहीं है; किन्तु उसके साथ का दर्शनविशुद्धि आदि सम्बन्धी विकल्प, वह बंध का कारण है। सोलहों भावनाओं में यह प्रकार समझ लेना चाहिये। जितने अंश में राग है, वही बंध का कारण है; जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह तो मोक्ष का ही कारण है, वह बंध का कारण नहीं है। इसलिये ऐसे वीतरागी रत्नत्रय के शुद्धभाव को ही जिनशासन में धर्म कहा है और उसी से जिनशासन की महत्ता है।

(२) विनय सम्पन्नता

तीर्थंकर प्रकृति—आस्रव के कारणभूत सोलह भावनाओं में दूसरी विनय सम्पन्नता है। सम्यक्त्वी को—देव-गुरु-धर्म के प्रति, शास्त्र के प्रति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के प्रति तथा सम्यग्दर्शनादि धारक संतों के प्रति अत्यन्त विनय होती है, उनके प्रति अंतरंग अनुमोदना होती है। यहाँ सम्यग्दर्शन सहित के ऐसे भाव की बात है। सम्यग्दर्शन के बिना मात्र विनय का शुभराग, वह कहीं तीर्थंकर प्रकृति का कारण नहीं होता, वह तो साधारण पुण्य बंध का कारण है। देव-गुरु की तथा सम्यग्दर्शनादि की यथार्थ पहिचान धर्मी को ही होती है, इसलिये उसी के सच्ची विनय सम्पन्नता होती है। मिथ्यादृष्टि के सच्ची विनय सम्पन्नता नहीं होती। जिसे राग का आदर है—राग द्वारा धर्म मानता है, वह वास्तव में देव-गुरु-शास्त्र की आज्ञा की अविनय करता है।

(३) शीलव्रतों में अतिचार रहितपना

यह भी सम्यगदर्शनसहित ही समझना। शीलव्रत का सच्चा भाव सम्यग्दर्शन के बाद की भूमिका में ही होता है; तथापि सम्यक्त्वी को उस शीलव्रत के राग का या उसके फल का बहुमान नहीं है; चिदानन्द स्वभाव का ही बहुमान होता है। अभी जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं है, उसे शील या व्रत कैसे ? और व्रत के बिना अतिचाररहितपने की बात कैसी ? सम्यग्दर्शन के पश्चात् निरतिचार व्रतादि के शुभराग द्वारा किसी जीव को तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो जाता है। किन्तु सम्यग्दर्शनरहित जीव व्रतादि करे, उसकी यहाँ बात नहीं है। सोलहकारण भावना में सम्यग्दर्शनरूपी शुद्धभाव की अखण्डता है, उस शुद्धभावसहित शुभराग ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण होता है; शुद्ध भावरहित शुभ से वैसी उच्च पुण्यप्रकृति का बंध नहीं होता; इसलिये शुद्धभाव की महिमा है—ऐसा यहाँ बतलाना है।

(४) अभीक्ष्णज्ञानोपयोग

अर्थात् ज्ञान उपयोग की सूक्ष्मता; ज्ञान का अत्यन्त रस! सम्यग्दर्शन सहित बारम्बार-निरन्तर श्रुत के पठन-पाठन में उपयोग को लगाये, ज्ञान के फल आदि का विचार करे; उसमें सम्यक्त्वी का ज्ञान उपयोग कहीं बंध का कारण नहीं है, किन्तु बारम्बार ज्ञान के विचार में रहने से उसके साथवाले शुभराग से तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो जाता है।

यह निश्चयसहित व्यवहार की बात है, इसलिये मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्दर्शन के बिना शास्त्र पढ़े—उसकी यह बात नहीं है। सम्यग्दर्शन के बिना मात्र शुभराग से जो पुण्य बँधता है, वह तो 'लौकिक पुण्य' है, वह साधारण है। और सम्यक्त्वी को चिदानन्दस्वभाव की दृष्टिपूर्वक के राग में जो पुण्य बंध होता है, वह अलौकिक पुण्य है; उस आराधक भावसहित पुण्य को श्रीमद्राजचन्द्रजी 'सत् पुण्य' कहते हैं। सम्यक्त्वी को ही सत् पुण्य होता है; तथापि उसे उस पुण्य की मिठास नहीं है। मिथ्यादृष्टि को पुण्य की मिठास है, उसके सत् पुण्य नहीं होता।

(५) संवेग

भवभ्रमण से भयभीत होकर मोक्षमार्ग के प्रति वेग अर्थात् उत्साहभाव आये, वह संवेग है। रत्नत्रयरूपी मोक्षमार्ग की ओर का उत्साह! वह वास्तव में सम्यग्दृष्टि के ही होता है; उसके साथ जो शुभरागरूप व्यवहार संवेग होता है, वह तीर्थंकरादि प्रकृति के बंध का कारण होता है और सम्यग्दर्शनादिरूप शुद्धभाव मोक्ष का कारण होता है।

(६) शक्तितः त्याग

अर्थात् शक्ति अनुसार त्याग; लेकिन किसे ? कहते हैं सम्यग्दृष्टि को ही होता है। वह अंतर में आत्मा की आनन्द शक्ति का भान करके उसमें एकाग्रता की शक्ति अनुसार त्याग करता है। अज्ञानी हठ से त्याग करे, उसकी यह बात नहीं है। सम्यग्दर्शन के बिना तो सब थोथा है; उसकी धर्म में कोई गिनती नहीं है। सम्यक्त्वी हो और कदाचित् विशेष त्यागी न हो—गृहस्थाश्रम में हो—तो भी उसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है (-श्रेणिक राजा की भाँति); किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव शुभराग से बाह्य में त्याग करके उससे तीर्थंकर प्रकृति बाँधना चाहे तो उसे नहीं बंध सकती। सम्यक्त्वी को भी त्याग में जितना शुद्ध वीतरागभाव है, वह कहीं बंध का कारण नहीं है, किन्तु उसके साथ के राग से तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो जाता है—जिसे उस प्रकार की योग्यता हो उसे।

(७) शक्ति अनुसार तप

उसमें भी उपरोक्तानुसार सम्यक्त्वी का ही तप समझना। सम्यग्दर्शन के बिना तप नहीं होता। शुद्ध उपयोग द्वारा चैतन्य का प्रतपन, सो निश्चय तप है; वह कर्मों के नाश का कारण है; और निश्चयतप सहित जिस तप का शुभविकल्प उठा, उससे किसी जीव को तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो जाता है। सम्यग्दर्शन को साथ रखकर ही यह बात है।

(८) साधु समाधि

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा को रत्नत्रय की आराधना का अत्यन्त प्रेम है; इसलिये रत्नत्रय के आराधक अन्य धर्मात्मा जीवों को आत्मसिद्धि में विघ्न आता देखकर, उसे दूर करने का भाव आता है; उनकी आराधना एवं समाधि अखंड बनी रहे—ऐसा भाव होता है; इसका नाम साधु समाधि भावना है। रत्नत्रय के साधक संतों के प्रति धर्मी को अंतर से बहुमान उछलने लगता है, उनकी सेवा का भाव आता है। स्वयं को उस रत्नत्रय का बड़ा प्रेम है; इसलिये उस भूमिका में अन्य रत्नत्रय के साधक धर्मात्माओं को भी अखण्ड समाधि रहे—शांति रहे, उसमें विघ्न न आये, ऐसी शुभ भावना होती है, और ऐसे उत्तम शुभभाव द्वारा किसी सम्यक्त्वी को तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी हो जाता है। सामनेवाले जीवों की समाधि तो उनके अपने भाव से है, किन्तु इस सम्यक्त्वी को वैसा भक्तिभाव अपनी भूमिका के कारण आता है।

(९) वैयावृत्त्यकरण

मोक्ष के साधक मुनियों की—धर्मात्माओं की वैयावृत्य अर्थात् सेवा करने का भाव

सम्यक्त्वी को आता है; यद्यपि धर्म के जिज्ञासुओं को भी वैसा भाव आता है, किन्तु यहाँ तो सम्यग्दर्शनसहित की बात है। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यादृष्टि जीव मात्र शुभभाव से जो वैयावृत्यादि करे, वह कहीं तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण नहीं हो सकता; किन्तु वह तो साधारण पुण्य बंध का कारण है। यहाँ तो सम्यग्दर्शनसहित के विशेष भावों की बात है। तीर्थंकर प्रकृति के कारणभूत इन सोलह भावनाओं का शुभभाव तो सम्यक्त्वी को ही आता है।

(१०) अर्हंत भक्ति

अरिहंत भगवान की भक्ति का यथार्थ भाव जैसा सम्यक्त्वी को होता है, वैसा मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। अंतर में सम्यग्दर्शनरूपी शुद्धभाव है, वह तो अरिहंतदेव की निश्चय स्तुति है, वह कही बंध का कारण नहीं है; किन्तु वहाँ साथ ही अरिहंत भगवान की भक्ति का भाव उछलता है—उस शुभभाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

देखो, यहाँ महिमा तो सम्यग्दर्शन की बतलाना है; पुण्य की महिमा नहीं बतलाना; किन्तु इस प्रकार का उच्च पुण्य, सम्यग्दर्शनसहित भूमिका में ही बँधता है—ऐसा कहकर सम्यग्दर्शन की महिमा बतलाना है। तीर्थंकर प्रकृति बँधने से जीव को (-स्वयं को या पर को) लाभ होता है—ऐसा नहीं बतलाता; क्योंकि उस जीव को स्वयं भी जब उस प्रकार के राग का अभाव होगा, तभी केवलज्ञान होगा; और केवलज्ञान होगा, तभी तीर्थंकर प्रकृति का फल प्राप्त होगा; उसके निमित्त से जो दिव्यध्वनि खिरेगी, उस ध्वनि के लक्ष से भी सामनेवाले श्रोता जीव को धर्म का लाभ नहीं होता; किन्तु उस वाणी का लक्ष छोड़कर अपने ज्ञानानन्दस्वभाव का लक्ष करे, तभी उसे धर्म का लाभ होता है और तभी उसके लिये वाणी में धर्म के निमित्तपने का आरोप आता है। इसप्रकार यद्यपि तीर्थंकर प्रकृति के बंध भाव से स्व को या पर को धर्म का लाभ नहीं होता; तथापि वह भाव धर्म की भूमिका में ही होता है, और फिर भी धर्मी उसे उपादेय नहीं मानते।

जिस जीव को तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ, वह जीव अवश्य ही तीसरे भव में केवलज्ञान प्राप्त करके तीर्थंकर होता है; किन्तु उसका निर्णय कहीं अकेले राग द्वारा नहीं हुआ है—सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव के प्रताप से वह निर्णय हुआ।

तीर्थंकर प्रकृति—आस्रव के कारणरूप सोलह भावनाएँ हैं, उनमें से यह दसवीं अर्हंत भक्ति है। सोलह भावनाओं में से किसी जीव को कोई भावना मुख्य होती है और किसी को कोई होती है—किन्तु सम्यग्दर्शनसहित दर्शनविशुद्धि तो सबको होती ही है—ऐसा नियम है।

निश्चय से तो सम्यग्दर्शन द्वारा इन्द्रियातीत ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करना, वह अर्हंत भक्ति है; ऐसी निश्चयभक्तिसहित व्यवहारभक्ति की यह बात है। मिथ्यादृष्टि को अकेली व्यवहारभक्ति होती है, उसकी यह बात नहीं है। अभी तो जिसे अरिहंत भगवान आदि की व्यवहारभक्ति का भाव भी उल्लसित नहीं होता, उसे परमार्थभक्ति अर्थात् सम्यग्दर्शनादि की पात्रता तो होगी ही कहाँ से ?

जिसप्रकार—व्यापारी की दृष्टि लाभ पर है; अधिक लाभ और कम खर्च होता हो तो वहाँ लाभ की दृष्टि में खर्च की परवाह नहीं करता। हजार का खर्च और लाख का लाभ होता हो तो वहाँ खर्च को मुख्य नहीं मानता; किन्तु लाभ को ही मुख्य मानकर व्यापार करता है; उसे लाभ का ही लक्ष है। उसी प्रकार सम्यक्त्वी के उपयोग का व्यापार आत्मोन्मुख हो गया है, उसमें आत्मा के लक्ष का लाभ है। सम्यक्त्वी व्यापारी की दृष्टि लाभ पर ही है; स्वभाव की दृष्टि में उसे शुद्धता का लाभ ही होता जाता है। शुभराग होने पर भी उसकी दृष्टि तो शुद्ध स्वभाव के लाभ पर ही है। अपने शुद्ध चिदानन्दस्वभाव पर दृष्टि रखकर सम्यक्त्वी जीव को जिनेन्द्र भगवान का बहुमान-भक्ति-पूजा, जिनमन्दिर तथा जिनबिम्ब प्रतिष्ठा का उत्सव, तीर्थयात्रादि का शुभभाव आता है; उस राग के निमित्त से कुछ आरम्भ-समारम्भ भी होता है, किन्तु धर्मात्मा को तो धर्म के बहुमान का लक्ष है, हिंसा का भाव उसका नहीं है; इसलिये वहाँ अल्पारम्भ को मुख्य नहीं माना है और स्वभाव दृष्टि के उल्लास में अल्प राग को भी मुख्य नहीं गिना है। अपने परिणाम में धर्म का उल्लास है, इसलिये धर्म का लाभ होता जाता है, उसी की मुख्यता है। वहाँ अल्प राग तो है, किन्तु धर्मी का उल्लास उस राग की ओर नहीं है; धर्मी का उल्लास तो धर्म पर ही है।

—ऐसे धर्मी को ही अर्हंत-भक्ति आदि भाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

(11) आचार्य भक्ति

अर्हंत भक्ति की भाँति आचार्य भक्ति में भी धर्मी को उस प्रकार का भाव आता है। सम्यक् रत्नत्रय के धारक आचार्य कैसे होते हैं ? उन्हें पहिचानने पर उनका बहुमान आता है। सोलह कारण भावना में तो सम्यग्दर्शनसहित आचार्य भक्ति की बात है।

(12) बहुश्रुत भक्ति

श्रुतकेवली अथवा उपाध्याय अथवा विशेष श्रुतज्ञानधारी संत—उनके प्रति धर्मी को जो भक्ति होती है—उसका नाम बहुश्रुत भक्ति है। अंतर में अपने भावश्रुतज्ञान को चिदानन्दस्वभाव में एकाकार किया है, उतनी तो भावश्रुत की निश्चयभक्ति की है; और वहाँ विशेष श्रुतज्ञानधारी संत के प्रति बहुमान का भक्तिभाव आता है; उसके निमित्त से किसी को तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी

होता है। श्रुतज्ञान क्या है, उसी की जिसे खबर नहीं है—ऐसे अज्ञानी को सच्ची श्रुतभक्ति नहीं होती और न उसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है।

भावश्रुत तो ज्ञान परिणति है; उस ज्ञान परिणति की अंतर के परमात्मा के साथ एक होने पर 'आनन्द पुत्र' का जन्म होता है। अभव्य को ऐसी ज्ञान परिणति नहीं होती, इसलिये उसके आनन्द का जन्म नहीं होता, किन्तु आकुलता का ही जन्म होता है; क्योंकि वह अपने ज्ञान को बाह्य में और राग में ही एकाग्र करता है; इसलिये आकुलता की ही उत्पत्ति होती है। ज्ञानी को चिदानन्दस्वभाव में ज्ञान परिणति की एकता होने से अतीन्द्रिय आनन्द का जन्म होता है।

(१३) प्रवचन भक्ति

भगवान के कहे हुए और संतों के गूँथे हुए ऐसे जो महान् शास्त्र हैं; उनके प्रति धर्मी को भक्ति का भाव आता है; उसमें भी उपरोक्तानुसार ही समझ लेना।

(१४) आवश्यकों का अपरिहार

सम्यग्दर्शन के पश्चात् चारित्रदशा में सामायिक, प्रतिक्रमणादि आवश्यक क्रियाएँ होती हैं; इसलिये उस-उस काल में उस प्रकार का विकल्प आता है। वहाँ जब जिस आवश्यक का काल हो—सामायिकादि का जो समय हो—उस काल में वह बराबर करना, और उनमें भंग नहीं पड़ने देना—उसका नाम आवश्यक का अपरिहार है। निर्विकल्पदशा न हो, वहाँ सम्यक्त्वी को ऐसा भाव आता है—उसकी बात है। सम्यग्दर्शन के बिना तो सामायिकादि होते ही नहीं। सामायिकादि सम्यग्दृष्टि के ही होते है; और जो रागरहित सामायिक है, वह कहीं बंध का कारण नहीं है, किन्तु इसके साथ का उस प्रकार का विकल्प, वह तीर्थंकर प्रकृति आदि के आस्रव का कारण है।

(१५) मार्ग प्रभावना

रत्नत्रयरूप जो मार्ग है, उसकी प्रभावना का भाव धर्मी को आता है; अज्ञानी को तो मार्ग का पता ही नहीं है। जिसने मार्ग जाना हो, वही उसकी प्रभावना करेगा न! प्रभावना में सबसे उत्तम प्रभावना तो 'आत्म प्रभावना' अर्थात् 'आत्मा की विशेष भावना' है, कि जिसका रत्नत्रयरूपी तेज द्वारा उद्यापन होने से केवलज्ञानरूपी उत्कृष्ट फल प्रदान करती है। स्वभाव की भावना द्वारा जितनी वीतरागी शुद्धता अपने आत्मा में प्रगट की, उतनी तो धर्मी को निश्चय प्रभावना है, और उसके साथ-साथ अस्थिरता की भूमिका में जिनधर्म की प्रभावना का शुभभाव भी उसे आता है। उसकी दृष्टि तो शुद्धभाव के लाभ पर ही है किन्तु बीच में राग आता है, उतना खर्च है। इस प्रकार

साधकदशा में अंशतः शुद्धता और अंशतः राग—दोनों होते हैं; केवलज्ञानी भगवान को राग का एकदम अभाव होकर पूर्ण आनन्द का लाभ हो गया है, इसलिये उन्हें तो अकेला लाभ ही है, और खर्च बिलकुल नहीं है। जिस प्रकार चक्रवर्ती के पद-पद पर निधान पकते हैं, उनमें उन्हें अकेला लाभ ही है; उसी प्रकार धर्म के चक्रवर्ती—ऐसे सर्वज्ञ भगवान को अकेला धर्म का पूरा लाभ ही है; साधक को भी शुद्ध स्वभाव की दृष्टि में पर्याय-पर्याय में लाभ ही होता रहता है, तथापि अभी अल्प राग है, उतना खर्च भी है; फिर भी उसे शुद्ध दृष्टि के बल से लाभ की ही मुख्यता है। शुद्धदृष्टिसहित बीच में रत्नत्रयरूपी सन्मार्ग की प्रभावना का तथा देव-गुरु-शास्त्र की प्रभावना का शुभभाव है, और वह तीर्थंकर प्रकृति आदि उच्च पुण्य बंधन का कारण है। रत्नत्रय का शुद्धभाव है, वह धर्म है और वही मोक्ष का कारण है।

(१६) प्रवचन वात्सल्य

अर्थात् संघ के प्रति तथा साधर्मी के प्रति अतिशय प्रमोद-वात्सल्य का भाव धर्मी को आता है। अंतर में स्वयं को रत्नत्रय धर्म की अतिशय प्रीति है, इसलिये रत्नत्रय की साधना करनेवाले अन्य धर्मात्माओं के प्रति भी उन्हें अतिशय प्रीति का भाव आता है, सम्यग्दर्शनसहित वात्सल्य की यह बात है। सम्यक्दर्शन से पूर्व की भूमिका में भी धर्मात्मा के प्रति जिज्ञासु को अत्यन्त वात्सल्य एवं भक्तिभाव होता है, किन्तु तीर्थंकर प्रकृति के कारणरूप हो—ऐसा वात्सल्य भाव तो सम्यग्दर्शनसहित जीव को होता है, इसलिये यहाँ उसकी बात है।

इसप्रकार तीर्थंकर प्रकृति के कारणरूप जो सोलह भावनाएँ कहीं, वे सम्यग्दर्शनसहित जीव के ही होती हैं, मिथ्यादृष्टि के नहीं होतीं। और इन सोलह भावनाओं में भी पहली दर्शन -विशुद्धि मुख्य है, अर्थात् पहली दर्शनविशुद्धि तो होना ही चाहिये। दर्शनविशुद्धि के बिना अन्य पन्द्रह भावनाओं का व्यवहार हो, तथापि वह कार्यकारी नहीं होता; और वे पन्द्रह भावनाएँ कदाचित् न हों तो भी अकेली दर्शनविशुद्धि भावना ही उन पन्द्रह का कार्य कर लेती है।—इसप्रकार दर्शनविशुद्धि अर्थात् सम्यग्दर्शन का ही माहात्म्य है। सम्यग्दर्शन स्वयं कहीं बंध का कारण नहीं है, किन्तु दर्शनविशुद्धि में सम्यग्दर्शन के साथ विशुद्धता सम्बन्धी जो विकल्प हो, वह बंध का कारण है—ऐसा समझना चाहिये।—इस प्रकार जैनशासन में सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव ही उपादेय हैं और उन शुद्धभावों के द्वारा ही जिनशासन की शोभा है, उन्हीं से जिनशासन की महिमा है।

❀ जय हो सम्यक्त्वी के शुद्धभाव की! ❀

गिरनार धाम में गुरुदेव का प्रवचन

[गिरनार यात्रा महोत्सव के प्रसंग पर जूनागढ़ में पूज्य गुरुदेव का प्रवचन]

वीर सं० २४८०, माघ शुक्ला १३, भाग-१

'हम क्या करें ?' अथवा 'जीवन का ध्येय क्या ?'

इस मनुष्य भव में अवतार लेकर करने योग्य कहो या जीवन का ध्येय कहो—वह यह है कि—प्रथम अपने वास्तविक स्वरूप की पहिचान करना और फिर उसमें एकाग्रता करना। चैतन्य के भान बिना जीव ने पूर्व काल में दयादि के शुभभाव भी अनंत बार किये हैं; वह कहीं जीवन का ध्येय नहीं है।

यह मनुष्य भव प्राप्त करके जिसे अपना हित करना हो—कल्याण करना हो उसे, 'दूसरे का कुछ भी मैं करता हूँ'—यह बुद्धि छोड़ देना चाहिये और अपने आत्मस्वरूप की सच्ची समझ का उद्यम करना चाहिये। [— पूज्य गुरुदेव]

जीव के कर्तव्य की समझ

इस देह में विद्यमान आत्मा शुद्ध ज्ञान-आनंद स्वरूप है; किन्तु अनादि से अपने वास्तविक स्वरूप के ज्ञान बिना विकार को तथा संयोग को अपना स्वरूप मानकर वह निजकल्याण से च्युत हो गया है। मैं कौन हूँ और मेरा सच्चा कर्तव्य क्या है, उसके भान बिना राग को तथा जड़ की क्रिया को अपना कर्तव्य मानकर अज्ञानी संसार में भटक रहा है। कई लोग पूछते हैं कि 'हमें क्या करना चाहिये ?' आज भी एक भाई चिट्ठी लिख कर पूछते हैं कि—'जिसे आत्मा को जानने की इच्छा है, उस मनुष्य को संसार में रहकर कैसा जीवन जीना चाहिये ?'—यहाँ प्रवचन में उसका सब स्पष्टीकरण आ जाता है। देखो, आत्मा को क्या करना चाहिये ? उसका उत्तर यह है कि भाई ! सबसे पहले तो आत्मा, जड़ में कुछ कर नहीं सकता। शरीर जड़ है, भाषा जड़ है, उस जड़ की अवस्था का कार्य आत्मा की इच्छा के आधीन नहीं होता। अब, अपने में शुभ-अशुभ इच्छारूपी विकार को तो जीव अनादि से करता ही आ रहा है और उसे अपना कर्तव्य मानकर संसार में भटक रहा है, किन्तु उसमें उसका हित नहीं है, इसलिये वह भी जीव का सच्चा कर्तव्य नहीं है। जड़ से भिन्न और

विकार से भी अधिक ऐसे अपने ज्ञानानन्दस्वभाव की प्रतीति करना, सो मोक्षमार्ग है; वही हित का उपाय है तथा वही प्रथम करने योग्य कर्तव्य है। मनुष्यत्व प्राप्त करके जिसे आत्मा की पहिचान करना हो तथा अपूर्व आत्महित साधना हो, उसे सत्समागम द्वारा आत्मा के वास्तविक स्वरूप का निर्णय करना चाहिये, वही प्रथम कर्तव्य है।

अज्ञानी क्रियाकांडी को ऐसा लगता है कि इसमें कोई क्रिया करना तो नहीं आया? किन्तु भाई! जो अनंत काल में कभी नहीं किया है, ऐसा आत्मस्वरूप का निर्णय करने में क्या श्रद्धा-ज्ञान की क्रिया नहीं आई? तथा अनंतानुबंधी रागादि के अभावरूप वीतरागी आचरण की क्रिया नहीं हुई? बाह्य में कोई आत्मा, जड़ की क्रिया कर ही कहाँ सकता है? इसलिये जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, उसे चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा की सच्ची पहिचान करना ही कर्तव्य है। भले ही संसार में गृहस्थदशा में विद्यमान हो, किन्तु यदि आत्मा की पहिचान और श्रद्धा करे तो वह कल्याण के मार्ग पर है। तथा बाह्य में त्यागी होकर भी यदि अंतर में आत्मा की पहिचान-प्रतीति न करे तो उस जीव का कल्याण नहीं होता।

अनादिकालीन अज्ञान का नाश करनेवाली अपूर्व ज्ञानक्रिया

कोई मनुष्य 'दो और दो पाँच' मानता है, तथा उस विपरीत मान्यतापूर्वक जितना हिसाब करता है, वह सब भूलयुक्त है; उसके बदले उस आदमी ने 'दो और दो चार'—ऐसा सत्य निश्चय किया, वहाँ भूल दूर हो गई। तो विचार करे कि उस मनुष्य ने कौनसी क्रिया की? बाह्य में उसने कुछ नहीं किया, किन्तु अंतर में उस प्रकार का निर्णय करने में ज्ञान की क्रिया की है और उस ज्ञान -क्रिया के द्वारा ही उस प्रकार का असत्य दूर होकर सत्य हुआ है। उस ज्ञान-क्रिया के सिवा शरीर के हलन-चलन या उठने-बैठने की क्रिया द्वारा उसकी भूल दूर नहीं हो सकती। उसी प्रकार शरीर के कार्य मैं करता हूँ और शरीर की क्रिया से मेरा धर्म होता है—ऐसे अज्ञान के कारण जीव तथा शरीर को एकरूप मानकर अज्ञानी जीव अनादि से संसार में भटक रहा है; शरीर और आत्मा बिलकुल भिन्न होने पर भी उनमें एकत्व की मान्यता से वह अज्ञानी जीव जो भी आचरण करता है, वे सब भूल युक्त हैं। शरीर मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ—इसप्रकार जड़-चेतन के यथार्थ भेदज्ञान द्वारा सच्ची समझ करने पर अनादिकालीन भूल दूर हो जाती है, वह अपूर्व क्रिया है। तो अब विचार करो कि उसमें जीव ने क्या क्रिया की? बाह्य में शरीरादि की क्रिया तो जीव ने की नहीं है, किन्तु उसने अंतर में—जो कभी नहीं किया था ऐसा—ज्ञानस्वरूप का अपूर्व निर्णय करने में

ज्ञान की वीतरागी क्रिया की है और उस ज्ञान की अंतरंग क्रिया द्वारा ही अनादिकालीन अज्ञान दूर होकर अपूर्व सम्यग्ज्ञान हुआ है।—ऐसी ज्ञान-क्रिया के अतिरिक्त शरीरादि की बाह्य क्रिया से अथवा राग की क्रिया से कभी अज्ञान दूर नहीं होता।

आत्मा का हित—अहित किस प्रकार है ?

यह ज्ञानस्वरूप आत्मा पर से सदैव भिन्न है। शरीर में रोग हो, वहाँ वह रोग मिटाने की इच्छा होने पर भी जीव उसे मिटा नहीं सकता। प्राणों से प्यारा इकलौता पुत्र मर रहा हो तो उसे बचाने की तीव्र इच्छा होने पर भी बचाया नहीं जा सकता;—इसप्रकार पर के कार्यों में जीव की इच्छा व्यर्थ है; जीव पर के कार्य में तो कुछ कर नहीं सकता, इसलिये पर के कार्यों में आत्म का हित—अहित नहीं है।

अब, अपने में क्या करने से अहित और क्या करने से हित होता है ? जिसे आत्मा का अहित दूर करके हित करना है, दोष दूर करके निर्दोषता प्रगट करना है, उसे क्या करना चाहिये ? उसकी यह बात है।' मैं ज्ञानानन्दस्वरूप पर से भिन्न हूँ, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है'—यह बात भूलकर 'पर के कार्य मैं करता हूँ और पर में मेरा हित है'—ऐसी मिथ्या मान्यता के कारण जीव अनादि से अपना अहित कर रहा है। जिसे वह अहित दूर करके आत्मा का हित करना हो, उसे ज्ञानानन्द -स्वरूप आत्मा की यथार्थ प्रतीति, सच्ची समझ करना चाहिये। वही प्रथम उपाय है। मैं ज्ञान हूँ, इच्छा होती है, वह विकार है, वह मेरा यथार्थ स्वरूप नहीं है और मेरी इच्छा पर में भी निष्फल है; शरीर तो नये-नये बदलते आ रहे हैं, वह संयोगी वस्तु है और मैं असंयोगी त्रिकाल हूँ; इच्छा भी प्रतिक्षण बदल जाती है; इसलिये वह मैं नहीं हूँ; मैं तो अनादि-अनंत एकरूप ज्ञानस्वरूप हूँ, परमात्मा होने का पूर्ण सामर्थ्य मुझमें विद्यमान है।—ऐसा आत्मज्ञान करना, वह हित का उपाय है।

मनुष्य भव में करने योग्य कार्य अथवा जीवन का ध्येय

जिस प्रकार लैंडी पीपर में चौंसठ पुटी चरपराहट होने की शक्ति है, उसी में से वह प्रगट होती है, बाहर में नहीं आती; उसी प्रकार आत्मा में ज्ञान और आनन्द की परिपूर्ण शक्ति त्रिकाल विद्यमान है; अन्तर्मुख होकर उस शक्ति की श्रद्धा तथा एकाग्रता करने पर उसी में से केवलज्ञान और पूर्णानन्द प्रगट होता है। इसलिये अंतर स्वभाव की श्रद्धा करना ही आत्महित का मूल है। जड़ लक्ष्मी तथा शरीरादि तो परवस्तु हैं; उनसे आत्महित का उपाय नहीं होता। इस मनुष्य भव में जन्म लेकर करने योग्य कार्य कहो अथवा जीवन का ध्येय कहो—वह यही है कि अपने यथार्थ स्वरूप

की पहिचान करके फिर उसमें एकाग्रता करना चाहिये। चैतन्य के भान बिना दयादि के शुभभाव भी जीव ने पूर्वकाल में अनंत बार किये हैं, वह कहीं जीवन का ध्येय नहीं है; किन्तु सर्व प्रकार के राग से पार चिदानन्दस्वभाव हैं; उसे समझना—उसकी प्रतीति करना, वह अपूर्व है। अज्ञानी को बाह्य का तथा राग का कर्तव्य भासित होता है किन्तु अंतर में चैतन्यस्वभाव की अपूर्व प्रतीति—समझ का कर्तव्य भासित नहीं होता और न उसकी महिमा आती है; इसलिये वह आत्मा को समझने का उपाय नहीं करता और बाह्य में पर के अभिमान में ही रुकता है। अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि दयादि पुण्य भावों से मैं जीव को बचा लूँ और पाप भाव से उसे हैरान कर दूँ; किन्तु पर जीव को बचाना या मारना वह उसके अधिकार की बात है ही नहीं। अरे भाई! जब इस शरीर में भी तेरी इच्छा काम नहीं आती, तो पर का तू क्या कर सकेगा? तेरी इच्छा न होने पर भी तेरे शरीर को लकवा मार जाता है, और अंग बेकार हो जाता है। जब तू अपने शरीर का भी नहीं कर सकता, तो फिर दूसरे जीवों को मैं सुखी-दु:खी कर दूँ, यह मान्यता तो महान भ्रमणा है। अभी तो पर का करने में ही जिसकी बुद्धि अटकी है, वह अपने आत्मा का हित कब करेगा? यह मनुष्य भव प्राप्त करके जिसे अपना हित करना हो—कल्याण करना हो, उसे यह बुद्धि छोड़ देना चाहिये कि दूसरे का कुछ भी मैं करता हूँ और स्वयं अपने आत्मस्वरूप की यथार्थ समझ—प्रतीति का उद्यम करना चाहिये। इसके अतिरिक्त दूसरा न तो कोई हित का उपाय है और न जीवन का सच्चा ध्येय है।

[—इस प्रवचन का दूसरा भाग अगले अंक में पढ़िये!]

हे जीव! तू आत्महित के कार्य में तत्पर हो

—और—

रागादि व्यवहार में तत्परता छोड़!

[श्री अष्टप्राभृत—मोक्षप्राभृत गाथा ३१ के प्रवचन से]

जिसकी दृष्टि जिसके सन्मुख लगी हो, उसी में वह जागृत रहता है। ज्ञानी की दृष्टि अपने आत्मा पर पड़ी है; इसलिये वह अपने स्वकार्य में जागता है; चैतन्य के ध्यान द्वारा रत्नत्रयरूप निज कार्य की साधना करता है; और अज्ञानी को तो व्यवहार की—राग की रुचि है, इसलिये वह राग में ही तत्पर है तथा चैतन्य के कार्य में सोता है, इसलिये उसे चैतन्य के सम्यग्दर्शनादि कार्य सिद्ध नहीं होते।

आत्मा के चिदानन्दस्वरूप का श्रद्धान करके जो उसके ध्यान में तत्पर है, वह जीव, रागादि व्यवहार में तत्पर नहीं होता; और जो जीव, रागादि व्यवहार में तत्पर है, वह आत्मा के कार्य में सोता है। इसलिये हे जीव! तू रागादि व्यवहार की रुचि छोड़ और आत्म-हित में जागृत हो, आत्म-साधना में तत्पर हो—ऐसा संतों का उपदेश है।

आत्मा में जो राग-द्वेष-मोहरूप विकार है, उसका नाश होकर, पूर्ण वीतरागता और आनन्द स्वरूप मोक्ष दशा कैसे हो?—उसकी यह बात चल रही है।

आत्मा जो परमात्मपना प्रगट करना चाहता है, वह उसकी अपनी ही अंतर्शक्ति में भरा है; उसकी श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रतारूप ध्यान द्वारा परमात्मदशा प्रगट होती है।—इसप्रकार परमात्मध्यान, वह मोक्ष का कारण है।

मैं स्वयं अतीन्द्रिय आनन्दरस से परिपूर्ण हूँ; मेरा स्वभाव ही आनन्दस्वरूप है—ऐसी अंतर प्रतीति द्वारा, ऐसे अंतर ज्ञान द्वारा तथा ऐसे अंतर-अनुभव द्वारा परम आनन्दरूप मोक्षदशा प्रगट होती है तथा मोहादि दु:खभाव दूर हो जाते हैं।

प्रश्न:—इसमें पूजा करना तो नहीं आया?

उत्तर:—वह भी आ गया।—किस प्रकार?—तो कहते हैं कि आत्मा स्वयं ही परमात्म-शक्ति से परिपूर्ण है—ऐसा स्वीकार करके उस ओर उपादेयबुद्धिरूप पूज्य भाव प्रगट किया, वही

परमात्मा की परमार्थ पूजा है और वहाँ परमात्मदशा को प्राप्त जीवों के प्रति साधक को सच्चा पूज्य भाव आता है, वह व्यवहार पूजा है। परमात्मा को पहिचाने बिना उसकी ओर सच्चा पूज्य भाव नहीं आता। इसलिये ऐसे परमात्मस्वरूपी आत्मा की पहिचान करना ही सच्ची पूजा तथा भक्ति है। परमात्मस्वरूप आत्मा को पहिचानकर उसका ध्यान करना ही मोक्ष का उपाय है। इस प्रकार आत्मध्यान की परम महिमा है।

आत्मा के चिदानन्दस्वरूप का श्रद्धान करके जो उसके ध्यान में तत्पर है, वह जीव रागादि में सोता है; यानी उसमें तत्पर नहीं है, और जो रागादि व्यवहार में तत्पर है, वह आत्मा के कार्य में सोता है—अर्थात् राग की रुचिवाले जीव को आत्मा का ध्यान नहीं होता—यह बात अब ३१ वीं गाथा में कहते हैं:—

जो सुत्तो ववहारं सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ॥३१॥

जिसे चिदानन्दस्वरूप आत्मा की रुचि है, वह आत्मध्यान द्वारा अपने आत्मकार्य में जागृत है—आत्म-हित में उद्यमी है, तथा वह व्यवहार में सोता है अर्थात् राग में उसकी रुचि नहीं है। तथा जिसे राग की रुचि है—रागरूप व्यवहार कार्य में जागृत है, वह चैतन्य के कार्य में सोता है; उसे आत्मा के हित की दरकार नहीं है। ज्ञानी को कुछ राग परिणाम होते हैं किन्तु वे चैतन्य की जागृति छोड़कर नहीं होते; उसकी जागृति-उत्साह तो चैतन्यस्वरूप में ही है।

ज्ञानी स्वरूप में जागृत हैं और व्यवहार में सोते हैं। वे चैतन्य की शुद्धता को साधने में जागृत हैं और जो राग हो, उसकी उन्हें प्रीति नहीं है-उसका आदर नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव, व्यवहार की मर्यादा को जानता है परन्तु उसे हितकर नहीं मानता।

जिसे जिसकी रुचि हो, उसी में वह जागृत रहता है। अज्ञानी को राग की रुचि है और वह चैतन्य में सोता है। पुण्य-पाप की ओर उसकी उन्मुखता है, किन्तु चैतन्योन्मुख नहीं है, इसलिये उसे सम्यग्दर्शनादिरूप स्वकार्य सिद्ध नहीं होता। ज्ञानी तो स्वकार्य में जागृत हैं; चैतन्य के ध्यान द्वारा रत्नत्रयरूप निजकार्य की साधना करते हैं। इसके सिवा जिसे राग की रुचि है—पुण्य की रुचि है, वह स्वकार्य की साधना करता है—ऐसा जैन शासन में नहीं कहा गया; क्योंकि राग, वह स्वकार्य नहीं है। स्वकार्य अर्थात् आत्मा के हित का कार्य; जिसमें आत्मा का हित न हो, उसे स्वकार्य कैसे कहा जा सकता है ? स्वकार्य उसे कहा है कि जिससे आत्मा की मुक्ति हो... इसलिये

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही वास्तव में स्वकार्य है। ज्ञानी अपने स्वकार्य में जागृत हैं, और अज्ञानी तो राग को ही स्वकार्य मानकर उसमें जागते हैं, इसलिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप स्वकार्य में वे सोते हैं और राग में-पर में जागते हैं। इसलिये कहते हैं कि—जो योगी-धर्मात्मा स्वकार्य में जागृत हैं, वे व्यवहार में—राग में सोते हैं। (—राग के प्रति जागृत-तत्पर नहीं हैं); और अज्ञानी, राग में—व्यवहार में जागृत हैं, तथा स्वकार्य में सोते हैं।

प्रभो! तेरी निधि तो तेरे स्वरूप में भरी है; तेरा आनन्द तो आत्मा में है... इसलिये उसमें जागृत हो... और राग में तेरा हित नहीं है, इसलिये उसमें तत्परता छोड़। राग करते-करते मेरा कल्याण होगा; व्यवहार करते-करते मेरा हित होगा—ऐसा माननेवाला अज्ञानी जीव, व्यवहार में जागृत है तथा आत्मा के कार्य में सोता है; उसे अपने स्वभाव का कार्य करना नहीं आता। राग को-व्यवहार को ही मोक्ष का कारण मानकर ज्ञान को वहाँ रोक दिया है, इसलिये वह आत्मा की ओर नहीं झुकता, इससे वह आत्म-कार्य के लिये अन्धा है तथा राग में ही जागता है। अज्ञानी कहते हैं कि पहले व्यवहार तो चाहिये न! व्यवहार वह साधन है'....तो यहाँ आचार्य भगवान स्पष्ट कहते हैं कि जो व्यवहार में सोता है, वही परमार्थ आत्महित की साधना करता है, और जो व्यवहार में जागता है, वह स्वकार्य में सोता है।

सावधानी कहाँ रखना चाहिये? उसकी यह बात है। इधर (अंतर में) स्वभाव है और इधर राग है; उसमें जो जीव, स्वभाव में जागृत है—सावधान है, वह स्वकार्य को साधता है, तथा जो जीव राग में सावधान है, वह स्वकार्य को नहीं साध सकता। जिसे चैतन्यस्वभाव को साधने की दरकार नहीं है, चैतन्य के कार्य में जागृति नहीं है और राग में ही जागृत है—बाह्यारम्भ-परिग्रह में ही सावधान होकर वर्त रहा है, वह साधु कैसा?

बाह्य सांसारिक व्यवहार-कौटुम्बिक कार्य, पैसे का लेन-देन आदि कोई कार्य मुनि के नहीं होते; इसलिये ऐसे कार्यों में जो तत्पर है और मुनि नाम धारण किये है-वह मुनि नहीं किन्तु दम्भी है। मुनिदशा में होनेवाला पंच महाव्रतादि का व्यवहार तथा गुरु की सेवा आदि का भाव आता है, किन्तु मुनि उसमें तत्पर नहीं है, वे तो स्वभाव की साधना में ही तत्पर हैं; बारम्बार राग को तोड़कर निर्विकल्प आनन्द का अनुभव करते हैं। व्यवहाररत्नत्रय का राग आता है, तथापि उसे मोक्षमार्ग नहीं मानते, इसलिये उसमें वे तत्पर नहीं हैं—स्वभाव के ध्यान को ही मोक्ष का साधन मानकर उसमें तत्पर हैं।

सम्यक्त्वी को चौथे गुणस्थान में भी इसीप्रकार की मान्यता होती है; श्रद्धा अपेक्षा से तो सम्यक्त्वी भी आत्मकार्य में ही तत्पर वर्तते हैं, वे राग में तत्पर नहीं हैं; राग को स्वप्न में भी मोक्ष का कारण नहीं मानते। मैं अपने चिदानन्दस्वरूप में स्थिर होऊँ, वही मेरे मोक्ष का कारण है;—ऐसा जानकर वे स्वरूप साधना में ही तत्पर हैं। व्यवहार को-शुभराग को जो हित का कारण मानते हों उनसे, इस गाथा का आधार देकर पं० टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशक में कहते हैं कि—'जो व्यवहार में सोते हैं, वे योगी अपने कार्य में जागृत हैं, तथा जो व्यवहार में जागृत हैं, वे अपने कार्य में सोते हैं; इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय—स्वद्रव्य-परद्रव्य का, तथा उनके भावों का, तथा कारण-कार्यादिक का—किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है, इसलिये ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है; अतः उसका त्याग करना चाहिये। और निश्चयनय उन्हीं का यथावत निरूपण करता है तथा किसी को किसी में नहीं मिलाता, इसलिये ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, अतः उसका श्रद्धान करना चाहिये।

(गुजराती आवृत्ति, पृष्ठ २५५-२५६)

आत्मा का जो शुद्ध चिदानन्दस्वभाव है, उस ओर उन्मुख होकर उसकी श्रद्धा करना तथा उस स्वभाव में उपयोग की जागृति रखना, वह मोक्ष का कारण है। इसलिये ज्ञानी-धर्मात्मा तो अपने शुद्ध-स्वभाव की ही साधना में तत्पर हैं—उसी में उद्यमी हैं—उसी में जागृत हैं; बीच में राग आता है किंतु उसमें तत्पर नहीं हैं, इसलिये वे व्यवहार में सो रहे (अतत्पर) हैं। इसलिये हे जीव! तू भी व्यवहार की तत्परता छोड़ और आत्मस्वभाव में तत्पर हो!

ग्राहकों को सूचना

आत्मधर्म का वार्षिक चन्दा (लवाजम) चैत्र मास में पूर्ण होता है, इसलिये कृपया ३) रु० मनीआर्डर से शीघ्र भेज दीजिये, जिससे वी०पी० खर्च ॥=) की आपको बचत होगी। आशा है आप इसमें देरी न करेंगे।

निवेदक :—

मैनेजर—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् तीर्थ श्री सम्मेदशिखर आदि की यात्रा के लिये

पूज्य गुरुदेव का मंगल विहार

[२]

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी ने कार्तिक शुक्ला १५ के दिन तीर्थयात्रा के लिये विहार किया। पालेज ग्राम में अनन्तनाथ भगवान की वेदी-प्रतिष्ठा और बम्बई में महान प्रभावना करके वे आजकल संघसहित तीर्थयात्रा कर रहे हैं। पूज्य गुरुदेव के सोनगढ़ से धंधुका जंक्शन तक के विहार-संस्मरण पहले दिये जा चुके हैं। बाद के संक्षिप्त समाचार यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। सोनगढ़ लौटने के पश्चात् यात्रा का विस्तृत वर्णन चित्रों सहित देने की भावना है। —ब्र० हरिलाल जैन

मगसिर कृष्णा ६ के दिन प्रातःकाल श्री जिनेन्द्रदेव की स्तुति और अनन्तनाथ भगवान के जय-जयकार सहित पूज्य गुरुदेव ने धंधुका से विहार किया। अब हम सौराष्ट्र से निकलकर भाल प्रदेश में आ गये थे। भाल प्रदेश का विहार कुछ कठिन है। धंधुका से खडोल तक घनी झाड़ियोंवाला कठिन मार्ग तय करते समय सम्मेदशिखर धाम की घनी झाड़ियों का स्मरण होता था। उस भाल प्रदेश में मार्गदर्शक के बिना चलना कठिन था। हम सबको तो इस संसाररूपी भाल प्रदेश से निकलकर सिद्धनगरी में पहुँचने के लिये पूज्य गुरुदेव ही मार्गदर्शक हैं। पूज्य गुरुदेव के साथ-साथ उनके पुनीत पदचिह्नों पर चलते रहें—ऐसी भावना पूर्वक खडोल ग्राम पहुँच और कुछ देर बाद वहाँ से चलकर १० बजे फेदरा ग्राम पहुँच गये।

फेदरा से भोलादग्राम जाते समय बीच में ओंकार नदी आई और भोलाद से गोलाणा ग्राम जाते समय साबरमती नदी को नाव द्वारा पार करना पड़ा। पू० गुरुदेव जीवन में पहली बार नौका में बैठे और नौका चल दी... चलती हुई नौका में पू० गुरुदेव के हस्ताक्षर (ॐ चिदानन्दाय नमः) कराये... गुरुदेव के साथ नौका विहार का वह प्रसंग अत्यन्त आनन्दकारी था। उसका विस्तृत वर्णन आगे करेंगे।

साबरमती पार करके हम गोलाणा ग्राम पहुँचे। हमारे साथ वाली मोटर बस दूसरे रास्ते से गई थी, वह एक स्थान पर कीचड़ में फँस गई। इसलिये उस दिन हमें न मिल सकी। गोलाणा ग्राम

में भाई श्री अमृतलाल नरसीभाई के स्वर्गवास के समाचार मिलते ही वातावरण में स्तब्धता छा गई। श्री अमृतलालभाई बहुत वर्षों से पू० गुरुदेव की छत्रछाया में रहकर शांतिमय जीवन बिता रहे थे। गुरुदेव के प्रवचनों को गुजराती भाषा में 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' (दैनिक पत्र) के रूप में आप ही बड़ी रुचि एवं संलग्नता से प्रकाशित करते थे।

श्रीमद् राजचन्द्र की भूमि में

मगसिर कृष्णा ९ के दिन गोलाणा से खम्भात आये। वहाँ पुराने जिनमन्दिर में श्री विमलनाथ भगवान आदि अनेक जिनेन्द्र भगवन्तों के दर्शन हुए... सोनगढ़ से विहार करने के पश्चात् हमें पहली बार जिनेन्द्र देव के दर्शन हो रहे थे। सबने भावपूर्वक दर्शन किये; फिर पू० गुरुदेव ने विमलनाथ भगवान का एक भजन गवाया और बाद में पू० बहिन श्री बहिन ने भी भक्ति कराई थी। भक्ति के पश्चात् सब लोग श्रीमद् राजचन्द्र की स्वाध्यायशाला देखने गये थे।

मगसिर कृष्णा १० के दिन गुरुदेव बडवा ग्राम पधारे और वहाँ श्रीमद् राजचन्द्रजी जिस वट वृक्ष के नीचे वचनिका करते थे वह देखा। उस स्थान का वातावरण अत्यन्त शांत है। दोपहर के प्रवचन में गुरुदेव ने श्रीमद् राजचनद्र के एक पत्र का उल्लेख करते हुए 'निज पद की प्राप्ति वह अनेकान्त का फल है'—यह विषय स्पष्टतापूर्वक समझाया था।

(१) 'मुमुक्षु के नेत्र महात्मा को पहिचान लेते हैं।'

(२) किसी प्रगट कारण का अवलम्बन लेकर विचार करके परोक्ष चले आ रहे सर्वज्ञ पुरुष को मात्र सम्यग्दृष्टिरूप से भी पहिचाना जाये तो उसका महत् फल है और ऐसा न हो तो सर्वज्ञ को सर्वज्ञ कहने का कोई आत्मा सम्बन्धी फल नहीं है—ऐसा अनुभव में आता है।

—इत्यादि सुन्दर वचनामृत वहाँ के सभा मंडप की दीवारों पर लिखे हैं।

व्याख्यान के बाद पू० गुरुदेव बडवा से वापिस खम्भात आये।

मगसिर कृष्णा ११ के दिन प्रातः काल पू० गुरुदेव ने बोरसद की ओर विहार किया..... हम सब भक्तजन मोटर बस में आनन्द पूर्वक भक्ति करते चल रहे थे। हमारी बस खम्भात से चली और रास्ता भूलकर वापिस खम्भात की ओर ही जारही थी.... इसप्रकार मार्ग भूल जाने से हमें पहुंचने में देर हुई। गुरुदेव भी मार्ग की गड़बड़ी के कारण साढ़े बारह बजे बोरसद पहुँचे। आते ही जिनमन्दिर में श्री आदिनाथ भगवान के दर्शन किये और तदुपरान्त एक गृहचैत्य में अजितनाथ भगवान (स्फटिक के) विराजमान हैं उनके दर्शन करने गये। दोपहर के प्रवचन में लोग अच्छी संख्या में आये और पू० गुरुदेव ने सम्यग्दर्शन की अद्भुत बात समझाई।

अगास का आश्रम

मगसिर कृष्णा १२ के दिन पू० गुरुदेव अगास पधारे। हम भक्तजन भी भक्ति करते हुए मोटर बस द्वारा वहाँ पहुँचे। वहाँ अनेक भक्तों ने प्रेमपूर्वक गुरुदेव का स्वागत किया। यहाँ चन्द्रप्रभ भगवान का दिगम्बर जिनमन्दिर है, वहाँ हमने दर्शन किये और फिर नीचे स्वाध्यायशाला में आये। वहाँ कुछ समय तक तो गुरुदेव इस प्रकार स्तब्ध बैठे रहे मानों श्रीमद् का स्मरण कर रहे हों कि—'कहाँ है मेरा भाई!' 'मेरे साधर्मी बन्धु का यह स्थान!' पश्चात् गुरुदेव ने संक्षिप्त मंगल-प्रवचन किया और फिर संस्था के विभिन्न स्थानों का तथा आसपास के वातावरण का अवलोकन करने गये। दोपहर के प्रवचन में गुरुदेव ने—'अनेकान्तिक मार्ग भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति के सिवा अन्य किसी हेतु से उपकारी नहीं है'—श्रीमद् के इस वचन का रहस्य समझाया था।

अगास में एक दिन रहकर दूसरे दिन गुरुदेव फिर बोरसद आये। दोपहर के समय श्रीमद् राजचन्द्रजी की पाठशाला देखने गये और वहाँ भी मंगल प्रवचन किया।

मगसिर कृष्णा १४ के दिन प्रातःकाल श्री जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करके हम बोरसद से रवाना हुए और वासद पहुँचे। दूसरे दिन वासद से छाणी आये। छाणी के दिगम्बर जैनमंदिर में चन्द्रप्रभ भगवान के दर्शन किये। वहाँ से दूर-दूर दृष्टि डालने पर पावागढ़ सिद्धक्षेत्र के दर्शन होते थे।

मगसिर शुक्ला प्रतिपदा के दिन छाणी से विहार करके बड़ौदा पहुँचे। बड़ौदा के श्रीसंघ ने धामधूम से गुरुदेव का स्वागत किया। वहाँ दो दिगम्बर जैन मंदिर हैं, उनके दर्शन किये। गुरुदेव के प्रवचन में करीब एक हजार शिक्षित व्यक्ति आये थे जो प्रवचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न एवं प्रभावित हुए थे। बड़ौदा के म्यूजियम में अनेक प्राचीन जिनबिम्ब हैं।

दो दिन बड़ौदा ठहरने के पश्चात् मगसिर शुक्ला तीज के दिन प्रातःकाल जिनेन्द्रदेव के दर्शन करके गुरुदेव इटोला ग्राम पधारे। वहाँ विद्यामन्दिर के शिक्षकों के निवेदन पर गुरुदेव ने विद्यामन्दिर के मैदान में एक वटवृक्ष की छाया तले शांत वातावरण में मुख्यतः बालकों के लिये प्रवचन किया और समझाया कि बालकों को कैसे संस्कार डालना चाहिये। प्रवचन के समय का दृश्य बड़ा सुन्दर था। कालेज के प्रिन्सिपल, प्रोफेसर और अ-ब में पढ़नेवाले बालक एकसाथ बैठकर गुरुदेव का प्रवचन सुन रहे थे।

मगसिर शुक्ला चौथ को विहार करके गुरुदेव मियागाम पधारे, और भक्तों ने उमंगपूर्वक स्वागत किया। दोपहर को सुसज्जित मंडप में गुरुदेव का प्रवचन हुआ।

पालेज में प्रतिष्ठा-महोत्सव

मियागाम में विहार करके मगसिर शुक्ला पंचमी के दिन पूज्य गुरुदेव पालेज पधारे। भक्तमंडल ने उल्लासपूर्वक स्वागत किया। वहाँ एक नये जिनमंदिर का निर्माण हुआ है, जिसमें वेदी-प्रतिष्ठा का महोत्सव था। पालेज का सुन्दर जिनमंदिर तथा अनंतनाथ और सीमंधरनाथ आदि के भव्य जिनबिम्बों को निहारते हुए गुरुदेव के मन में आनन्द की लहरें उठती थीं। पूज्य गुरुदेव बचपन में वहाँ जिस दुकान पर बैठते थे वह दुकान, जहाँ अफीम का केस बना था वह स्थल और जहाँ वे एकान्त में बैठकर विचार मनन किया करते थे, वह कमरा भी भक्तों ने देखा। मगसिर शुक्ला सप्तमी के दिन भक्तों ने पालेज की दुकान में उमंग पूर्वक भक्ति की थी... वही में गुरुदेव के हस्ताक्षर कराये थे। गुरुदेव ने हँसते-हँसते ॐकार लिखकर कहा कि 'यह भगवान की वाणी है।'

मगसिर शुक्ला अष्टमी से वेदी प्रतिष्ठा की विधि प्रारम्भ हुई। प्रतिष्ठा-मंडप में जिनेन्द्र देव की स्थापना तथा ध्वजारोपण हुआ और फिर ढाई द्वीप (बीस विहरमान तीर्थंकर) का पूजन-विधान प्रारम्भ किया गया। दोपहर के समय पू० गुरुदेव का प्रवचन हुआ और रात्रि को जिनेन्द्र-कीर्तन का कार्यक्रम रखा गया। दूसरे दिन भी वही पूजन-विधान चलता रहा। दसवीं के दिन नान्दी विधान, इन्द्र प्रतिष्ठा, यागमंडल विधान, जलयात्रा तथा वेदीशुद्धि आदि विधियाँ हुईं। पू० बहिन श्री बहिन के शुभहस्त से वेदी शुद्धि की कुछ महत्त्वपूर्ण क्रियाऐं देखकर भक्तजनों को आनंद होता था। पू० गुरुदेव के प्रवचन में करीब डेढ़ हजार व्यक्ति एकत्रित हुए थे और गुरुदेव ने सम्यग्दर्शन की महिमा अच्छे ढंग से समझाई थी।

मगसिर शुक्ला एकादशी-पालेज में श्री अनंतनाथ भगवान की प्रतिष्ठा का मंगल दिन है। 'तमारां शा करीअे सन्मान... पधारो अनंतनाथ भगवान'—इत्यादि भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवन्तों की जिनमन्दिर में स्थापना हुई थी।

चालीस हजार का नूतन जिनालय

सवा नौ बजे पूज्य गुरुदेव पधारे... जिनेन्द्र भगवन्तों के निकट उनके नन्दन आये... मांगलिक सुनाकर गुरुदेव ने भगवान के आसन पर मंगल-स्वस्तिक किया और फिर भक्तों के जय-जयकार के बीच हार्दिक शुद्धभाव तथा पावन हस्त से भगवान को वेदी पर विराजमान

किया... हृदय में स्थापित जिनेन्द्रदेव की वेदी पर स्थापना की। फिर समस्त भक्तों ने हीरा-माणिकों से भगवान का स्वागत किया। यहाँ का जिनमन्दिर करीब चालीस हजार में तैयार हुआ है। उसमें नीचे मूलनायक श्री अनंतनाथ, शांतिनाथ एवं सीमंधरनाथ भगवान विराजमान हैं और ऊपर के भाग में पार्श्वनाथ, अभिनन्दननाथ तथा अरहनाथ भगवान की स्थापना हुई है। पास ही ज्ञान मन्दिर में श्री समयसारजी—जिनवाणी माता की स्थापना की गई है। प्रतिष्ठा के पश्चात् पूज्य गुरुदेव ने अत्यन्त भावपूर्वक मांगलिक सुनाया था। शांतियज्ञ और प्रवचन के बाद भव्य रथयात्रा का जुलूस निकला था। हाथी पर विराजमान जिनराज की शोभा देखते ही बनती थी। पालेज में वह रथयात्रा अद्भुत थी। रात्रि को भक्ति-कीर्तन हुआ था। प्रतिष्ठा-महोत्सव के प्रसंग पर वहाँ के सेठ कुँवरजी भाई आणंदजी भाई ने खूब उत्साह प्रदर्शित किया था।

मगसिर शुक्ला १२ के दिन प्रातः काल पूज्य गुरुदेव जिनमन्दिर में दर्शन करने पधारे और अनंतनाथ भगवान की स्तुति की... अभिनन्दन नाथ की अभिनंदन किया... और जय जयकार पूर्वक पालेज से विहार करके भरूच की ओर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेव जैनधर्म की प्रभावना करते हुए विचर रहे हैं। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ आत्मा और परमात्मा की चर्चा सुनाई देती है। गुरुदेव के आगमन की सूचना मिलते ही सारे नगर का वातावरण अध्यात्ममय बन जाता है—यह उनका अपूर्व प्रभाव है। हजारों लोग जिज्ञासापूर्वक गुरुदेव का पावन सन्देश सुनते हैं।

गुरुदेव ने प्रथम बार अर्घ्य चढ़ाया

मगसर शुक्ला १३ के प्रातःकाल पार्श्वप्रभु के दर्शन करके पूज्य गुरुदेव ने भरूच से अंकलेश्वर की ओर विहार किया। इस भवसागर को सम्यक्त्वरूपी सेतु द्वारा पार कर लें—ऐसी भावना भाते-भाते भक्तजनों ने पूज्य गुरुदेव के साथ नर्मदा नदी का एक मील लम्बा पुल पार किया। अब हम पुष्पदन्त-भूतबलि जैसे महान श्रुतधर संतों की पावन भूमि में पहुँच रहे थे। जिस भूमि में वे महान संत पूर्वकाल में विचरे थे, उस भूमि में वर्तमान संतों के साथ विचरते हुए अपार आनन्द का अनुभव हो रहा था।

हम साढ़े सात बजे अंकलेश्वर पहुँचे; वहाँ से सीधे पाँच मील सजोद ग्राम तक पूज्य गुरुदेव के साथ गये सजोद ग्राम में विराजमान शीतलनाथ भगवान की प्रतिमा अत्यन्त भव्य है, मानों चौथे काल की हो। मूर्ति के सन्मुख बैठते ही आत्मध्यान की प्रेरणा जागृत होती है। गुरुदेव के

साथ भक्तजनों ने भी भगवान को अच्छी तरह निरख-निरख कर देखा... स्तुति की... और अर्घ्य चढ़ाया। वहीं पूज्य गुरुदेव ने भी श्री जिनेन्द्र भगवान को प्रथम बार अर्घ्य चढ़ाया। गुरुदेव भक्तिपूर्वक अर्घ्य चढ़ा रहे थे और वह दृश्य देखकर भक्तों को अपार हर्ष हो रहा था।

श्रुतधाम अंकलेश्वर

सजोद में श्री शीतलनाथ भगवान के दर्शन करके पूज्य गुरुदेव श्रुतधाम अंकलेश्वर पधारे और भक्तों ने प्रेमपूर्वक स्वागत किया। दो हजार वर्ष पहले वहाँ श्रुत का महा महोत्सव मनाया गया था। अंकलेश्वर की आबादी बीस हजार है; जहाँ दिगम्बर जैनों के २० घर और चार मन्दिर हैं। मन्दिरों में अनेक प्राचीन जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। अनेक स्थानों पर मुनियों की प्रतिमाएँ भी हैं। सायंकाल बहिन श्री बहिन ने श्रुतधर संतों की और जिनवाणी माता की अद्‌भुत भक्ति कराई थी। अंकलेश्वर यात्रा का विस्तृत वर्णन अगले अंकों में करेंगे।

सूरत में शानदार स्वागत

मगसर शुक्ला १४ के दिन अंकलेश्वर से चलकर पूज्य गुरुदेव कीम गाँव में आये और पूर्णिमा के दिन सूरत में पदार्पण किया। सूरतनगर गुरुदेव का स्वागत करने के लिये अधीर हो रहा था!.... सूरत की मानों सूरत ही बदल गई थी। गुरुदेव के आते ही वहाँ की जनता ने उमंगपूर्वक स्वागत किया। चंदावाड़ी में ठहरने की व्यवस्था की गई थी। पहुँचते ही जिनमन्दिरों के दर्शन किये। दोपहर को बिसेन्ट होल में गुरुदेव का प्रवचन था जिसे सुनने के लिये जनता हजारों की संख्या में एकत्रित हुई थी। रात्रि चर्चा में भी लोग अच्छी संख्या में उपस्थित होते थे।

पौष कृष्णा प्रतिपदा के दिन गुरुदेव और भक्तजन सूरत से तीन मील दूर कतारग्राम गये। वहाँ श्री कुन्दकुन्दाचार्य, धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिस्वामी, जम्बूस्वामी, विद्यानन्दिस्वामी, रविसेनस्वामी, जयसेनस्वामी, योगीन्दुस्वामी, जिनसेनस्वामी, अकलंकस्वामी आदि अनेक संतों के चरण कमल हैं। वहाँ भक्तिभावपूर्वक दर्शन किये और सूरत लौटे। कतार का वातावरण अत्यन्त उपशांत था। सूरत में प्रवचन के बाद भक्ति हुई थी। वहाँ चंदावाड़ी के जिनमन्दिर में एक छोटी सी सुवर्ण-प्रतिमा है। रात को चर्चा में पूज्य गुरुदेव ने आत्मा के शांतरस का (सम्यक्त्वी के आनन्द का) अद्‌भुत वर्णन किया था। पूज्य गुरुदेव के सूरत आगमन से दो दिन में बड़ी प्रभावना हुई और मूलचन्द किशनदास कापड़िया आदि दि० जैन समाज के सभी जिज्ञासुओं को महान हर्ष हुआ। 'जैनमित्र' में इस प्रसंग का भावपूर्ण वर्णन प्रकाशित किया था।

पौष कृष्णा दूज के दिन प्रात:काल जिनेन्द्रदेव के दर्शन करके पूज्य गुरुदेव ने सूरत से विहार किया और पलसाणा ग्राम पहुँचे। तीज के दिन नवसारी होते हुये चौथ को चीखली आये। चीखली की जनता ने गुरुदेव का अच्छा स्वागत किया। दोपहर को थियेटर में प्रवचन हुआ। सारा होल विद्यार्थी भाई-बहिनों से खचाखच भर गया था। प्रवचन के बाद वहाँ के हेडमास्टर ने गुरुदेव के प्रति हार्दिक उल्लास व्यक्त किया।

पंचमी के दिन चीखली से वलसाड़ आये। और गीता सदन में सुन्दर प्रवचन किया... सायंकाल गुरुदेव एक गृहचैत्य में पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन करने पधारे थे। रात को चर्चा में गुरुदेव ने पुण्य और पुरुषार्थ सम्बन्धी स्पष्टीकरण किया था।

आदिवासी प्रदेश

छठ के दिन हम वलसाड़ से वापी ग्राम आये और दूसरे दिन (सप्तमी-अष्टमी एक साथ) तलासरी ग्राम पहुँचे। यह ग्राम आदिवासी प्रदेश में है। सारा प्रदेश घने जंगलों और झाड़ियों से भरा है। गुजरात का प्रवास पूरा करके अब हमने महाराष्ट्र में प्रवेश किया। इसप्रकार सम्मेदशिखर यात्रा के हेतु गुरुदेव के साथ वन-जंगलों में विचरते हुए कभी-कभी हमें आहारदान का भी अवसर प्राप्त होता था।

तलासरी के वन में घूमते समय पूज्य गुरुदेव को वैराग्य और ध्यान की भावनाएँ उठ रही थीं। सायंकाल गुरुदेव हमें वहाँ का वन दिखलाने ले गये थे और वहीं बैठकर वनवासी मुनिवरों की स्तुति की थी। आज कुन्दकुन्दस्वामी की आचार्य पदवी का दिन था और उसी दिन वन में मुनियों की स्तुति का प्रसंग आने से सबको हर्ष हो रहा था। तत्सम्बन्धी विशेष वर्णन अगले अंकों में दिया जायेगा।

भीमंडी और शीव

पौष कृष्णा ९ के दिन गुरुदेव कासाग्राम पधारे और वहाँ शिक्षण शिविर में दो सौ मराठी शिक्षकों के बीच एक वृक्ष के नीचे गुरुदेव ने सप्तव्यसन-त्याग सम्बन्धी हृदयग्राही प्रवचन किया। दूसरे दिन कासा से मनोर आये। मनोर से खुपरी गाँव होते हुए शाम को अंबाड़ी पहुँचे। वहाँ के एकान्त शान्त वातावरण में पूज्य गुरुदेव ने 'एकाकी विचरतो...' आदि भावनाऐं बोली थीं। पौष कृष्णा १२ के दिन पू० गुरुदेव भीमंडी पधारे और भक्तों ने उमंगपूर्वक स्वागत किया। बम्बई से करीब पाँच सौ भक्तजन गुरुदेव का प्रवचन सुनने आये थे। सायंकाल भीमंडी से विहार करके थाना

पहुँचे। थाना के श्वेताम्बर मन्दिर में श्री सीमंधर भगवान की मूर्ति भी है।

पौष कृष्णा त्रयोदशी के दिन गुरुदेव भीमंडी से शीव पहुँचे... बीच में घाटकोपर, कुर्ला, मुलन्द आदि स्थानों पर सैकड़ों भक्तों ने उनका स्वागत किया। शीव में शानदार स्वागत हुआ और मंगल-प्रवचन में पूज्य गुरुदेव ने समझाया कि 'शिवनगरी में प्रवेश कैसे हो सकता है।'

बम्बई का महावीर नगर

पौष कृष्णा चतुर्दशी के दिन शीव से विहार करके पू० गुरुदेव ने बम्बई शहर में पदार्पण किया। बम्बई के हजारों भक्तों ने अत्यन्त उल्लासपूर्वक उनका स्वागत किया। बम्बई की अट्टालिकाएँ गुरुदेव के दर्शनों के लिये खचाखच भर गई थीं... लाखों लोगों ने उत्सुकता पूर्वक गुरुदेव के दर्शन किये। उस दिन बम्बई नगरी जगह-जगह सजाई गई थी। गुरुदेव के प्रवचन में सुबह-शाम सात-आठ हजार श्रोता उपस्थित होते थे। गुरुदेव बम्बई में १७ दिन रहे और उस अरसे में बम्बई की जनता ने जिस उत्साह पूर्वक भाग लिया तथा जो प्रभावना हुई, उसे देखकर लोग चकित हो जाते थे। मुम्बादेवी के मैदान में महावीर नगर बसाया गया था जिसमें सुन्दर प्रवचन मण्डप था। उसमें प्रवचन सभा का दृश्य तो देखते ही बनता था। बम्बई में पाँच दिगम्बर जिनमन्दिर (भूलेश्वर, कालबादेवी, गुलालबाड़ी, तथा चौपाटी पर दो काँच के मन्दिर) हैं। गुरुदेव सभी मन्दिरों में दर्शनार्थ गये थे और वहाँ भगवान का हीरा-माणिकों से स्वागत किया था। यहाँ गुरुदेव के प्रभाव से जौहरी बाजार की ओर एक नये दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण कार्य चल रहा है। बम्बई मुमुक्षु मंडल के प्रमुख महोदय ने गुरुदेव के पावन हस्त से शिलान्यास विधि कराई थी। गुरुदेव का जो भव्य स्वागत हुआ, उसकी रिपोर्ट बम्बई के अनेक पत्रकारों ने की थी। वहीं जयपुर संघ की ओर से (तीन सौ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के हस्ताक्षर सहित) आमंत्रण-पत्र आया था जिसमें गुरुदेव से जयपुर में ही चतुर्मास की प्रार्थना की गई थी। इसके सिवा इन्दौर, कलकत्ता, दिल्ली आदि अनेक स्थानों से आमंत्रण-पत्र पहुँचे थे। बम्बई के म्यूजियम में श्री बाहुबलि भगवान की बारह सौ वर्ष प्राचीन प्रतिमा हैं। सोनगढ़ के भक्त मंडल का उत्साह देखकर बम्बई के भक्तजन अत्यन्त प्रभावित हुए थे। जब पूज्य गुरुदेव आठ-दस हजार की सभा में अपने मधुर कंठ से प्रभावक शैली में प्रवचन करते थे, उस समय सारी सभा स्तब्ध रह जाती थी और वैराग्य का वातावरण छा जाता था। गुरुदेव के आगमन से वह मोहमयी नगरी मानों धर्म नगरी बन गई थी। रविवार को श्री जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा का जुलूस भक्तिपूर्वक धामधूम से निकाला गया था।

मोटर द्वारा यात्रा-प्रयाण

बम्बई में १७ दिन ठहर कर पौष शुक्ला पूर्णिमा के दिन पूज्य गुरुदेव ने संघ सहित मोटर द्वारा तीर्थयात्रा के लिये मंगल प्रस्थान किया। नगर-नगर में पूज्य गुरुदेव जैनधर्म की प्रभावना करते हुए शाश्वत् सिद्धिधाम श्री सम्मेदशिखर की यात्रा के हेतु विचर रहे हैं और सिद्धि का पंथ प्रसिद्ध कर रहे हैं। गुरुदेव का यह प्रवास सारे भारत में जैनधर्म का जय-जयकार फैला रहा है।

बम्बई से भीमंडी होते हुए पू० गुरुदेव ने गजपंथा की ओर विहार किया और माघ कृष्णा प्रतिपदा को गजपंथा की यात्रा की। यहाँ से सात बलभद्र तथा अनेक मुनिवर मोक्ष पधारे हैं। पर्वत पर पार्श्वनाथ भगवान की एक आठ फीट ऊँची भव्य प्रतिमा है और पंच परमेष्ठी आदि की प्रतिमाएँ भी हैं। सात बलभद्रों के चरण कमल भी अंकित हैं। उल्लासपूर्वक वहाँ की यात्रा करके संघ मांगीतुंगी आया।

नौ करोड़ मुनियों का मुक्तिधाम-मांगीतुंगी

मांगीतुंगी से श्री रामचन्द्रजी, हनुमानजी तथा ९९ करोड़ मुनि मोक्ष पधारे हैं। पर्वत की चढ़ाई बड़ी कठिन है। माघ कृष्णा दूज के दिन गुरुदेव ने संघ सहित यात्रा की। पर्वत पर बहुत प्राचीन काल की सुन्दर शांति प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मांगी और तुंगी दो अलग-अलग शिखर हैं। सेठ गजराजजी गंगवाल भी वहाँ आये थे और उन्होंने गुरुदेव के स्वागत में भाषण दिया था। वहाँ की ट्रस्ट कमीटी की ओर से भी पूज्य गुरुदेव को एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया था। मांगीतंगी के लिये अपील करने पर करीब चार हजार का फंड हो गया था।

माघ कृष्णा तीज को प्रवचन के बाद भगवान की रथयात्रा का जलूस निकला था।

माघ कृष्णा चौथ के दिन मांगीतुंगी से चलकर धूलिया आये और वहाँ के भक्तों ने उमंगपूर्वक गुरुदेव का स्वागत किया। प्रवचन सुनने के लिये करीब ढाई हजार आदमी एकत्रित हुये थे।

चौरासी फुट ऊँची प्रतिमा

धूलिया से प्रस्थान करके गुरुदेव संघसहित वड़वानी आये और माघ कृष्णा छठ के दिन वहाँ की यात्रा की। वड़वानी में श्री आदिनाथ भगवान की ८४ फुट ऊँची (बावनगजा) खड्गासन मूर्ति पहाड़ काटकर बनाई गई है जो एशिया भर में सबसे ऊँची मूर्ति है। पहाड़ की तलहटी में भी अनेक जिनमन्दिर हैं। उस पर्वत से श्री इन्द्रजीत, कुम्भकरण तथा अन्य करोड़ों मुनियों ने मोक्ष प्राप्त

किया है। उसी पहाड़ पर श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव की खड्गासन प्रतिमा है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव सीमंधर भगवान के सामने (पूर्व दिशा में) हाथ जोड़कर खड़े हैं। वह दृश्य देखकर पूज्य गुरुदेव तथा भक्तजनों को भक्ति का उल्लास आ रहा था। गुरुदेव ने भावपूर्वक जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किया, जिसे देखते हुए भक्तजन आनन्दमग्न हो गये थे। दोपहर को ग्राम में गुरुदेव का प्रवचन हुआ।

बड़वानी से चलकर गुरुदेव पावागिरि-ऊन आये। पावागिरि से सुवर्णभद्रादि अनेक मुनियों ने मुक्ति प्राप्त की है। भव्य जिनमंदिर में शांतिनाथ-कुंथुनाथ अरहनाथ भगवान की विशाल (१५ फुट ऊँची) प्रतिमाएँ अतिशय उपशांत मुद्रा में खड्गासन स्थित हैं। उनकी उत्साहपूर्वक भक्ति की।

इन्दौर में प्रवेश

माघ कृष्णा नवमी के दिन पूज्य गुरुदेव खंडवा पधारे और वहाँ के लोगों ने भावपूर्वक भव्य स्वागत किया। संघ की सम्पूर्ण व्यवस्था भी वहीं के समाज की ओर से की गई थी। व्याख्यान में तीन-हजार श्रोता भाग लेते थे। भक्ति, रात्रि चर्चा आदि में भी लोगों ने उत्साह पूर्वक भाग लिया। वहाँ से गुरुदेव ने सिद्धवरकूट की ओर विहार किया और माघ कृष्णा १२, ता० २७-१-५७ के दिन प्रातःकाल साढ़े सात बजे इन्दौरनगर में प्रवेश किया।

[इन्दौर में गुरुदेव ४ दिन ठहरे थे। वहाँ गुरुदेव के शानदार स्वागत तथा भक्तजनों के उल्लास का वर्णन अगले अंक में पढ़िये।]

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

मूल में भूल	।।।)	जैन बालपोथी	।)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	सम्यग्दर्शन	१ ॥=
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१ ।=)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)		
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)	भेदविज्ञानसार	२)
प्रवचनसार	५)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
अष्टपाहुड़	३)	समयसार पद्यानुवाद	।)
चिद्विलास	१=)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
आत्मावलोकन	१)	स्तोत्रत्रयी	॥)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
द्वितीय भाग	२)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम-	३)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥-)	आत्मधर्म फाइलें १-२-३-५- ६-७-८-१० वर्ष	३ ।।।)
द्वितीय भाग	॥-)		

हिन्दी आत्मधर्म की फाइलें

वर्ष १, २, ३, ५, ६, ७,, ८, १० यह आठ फाइलें एक साथ लेने
वालों को ३०-०-० के बदले २०-०-० में दी जायेंगी।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।